दी नेहु जर्नल, वर्ष : ५, संख्या : १ व २, २००७

खासी साहित्य के सांस्कृतिक परिपार्श्व की विकास-यात्रा

डॉ. माधवेन्द्र प्रसाद पाण्डेय

'कदाचित तुम दुर्बल और शक्तिहीन हो
शायद तुम्हें मौन रोदन करना पड़े,
पर कौन कहता है कि तुम
प्राप्त नहीं कर सकते ख्याति और कीर्ति'[१]
..... भयभीत मत हो, यदि तुम्हें गुजरना पड़े,
अग्नि और रक्त की राह से
साहसी ही पहुँच सकते हैं
प्रतिष्ठा के शिखर पर ।[२]

खासी साहित्य के अप्रतिम कवि सोसोथाम की उपर्युक्त पंक्तियाँ खासी समुदाय के संघर्ष एवं अदम्य जिजीविषा की ओर संकेत करती हैं जिससे गुजर कर उसने अपने विकास की मंजिलें तय की हैं । आज खासी साहित्य एवं संस्कृति, जो अत्यन्त मजबूत स्थिति में दिखलाई दे रही है, उसके पीछे उसका सांस्कृतिक संघर्ष ही कार्य कर रहा है ।

सांस्कृतिक संघर्ष वस्तुतः विकास की वह अवस्था होती है जिसमें पुराने-नये, बाह्य-आंतरिक एवं रूढ़ियों-परम्पराओं में से जीवंत एवं प्रगतिशील तत्वों को ग्रहण कर समाज आगे की ओर बढ़ता है । इसमें प्राचीन निष्क्रिय अवधारणायें ध्वस्त होती हैं और नयी मान्यताओं को स्थान मिलता है । इस क्रम में साहित्यिक विकास अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निबाहता है क्योंकि साहित्य मानव का जिन्दा इतिहास होता है । उसमें सांस्कृतिक, सामाजिक एवं मानसिक अवस्थाओं का लेखाजोखा होता है जिससे मानव-विकास के विभिन्न चरणों एवं उनके आंतरिक, बाह्य परिस्थितियों एवं कारणों का पता चलता है । इस दृष्टि से खासी साहित्य की विकास-यात्रा का आरेखन दिलचस्प होगा ।

मेघालय के पूर्वी पहाड़ी क्षेत्र में बसे इन खासियों के 'मूल स्थान' की अगर बात करें तो यह जनजाति प्रोटो-ऑस्ट्राइड-समूह के 'मोनख्मेर वर्ग' से सम्बद्ध मानी जाती है जिनका मूल स्थान कम्बोडिया और आस-पास का क्षेत्र था । 'हर खासी कहता है कि उसके पूर्वज किसी अन्य स्थान पर सदियों से रहते थे जो स्वर्ग की तरह था और वहीं से ये यहाँ आये । खासी कवि 'सोत्तिजुक' (Sottijuk) या स्वर्ण युग (Golden age) की बात करते हैं । जब कोई खासी परमसत्ता की पूजा करता है या उसके बारे में कुछ कहता है तो इस शब्द का प्रयोग करता है ।'[३] यद्यपि डॉ. एच. डब्लू. स्टेन यह निश्चित नहीं कर पाते कि यह संस्कृत के 'सत्ययुग' से लिया गया है या प्राचीन प्रयोग है, परन्तु यह स्वीकार करते हैं कि कुछ लेखक इस युग का उल्लेख 'एइम किसिआर' के रूप में करते हैं ।[४] होमीवेल लिंडोह के अनुसार खासियों के पूर्वज नौगोंग, लुम्डिंग और हाफ्लाँग

होते हुए यहाँ पहुँचे थे जो 'कुपली नदी के दूसरी ओर था ।"[५] खासी विद्वान यह भी मानते हैं कि खासी पहले जयन्तिया पर्वत क्षेत्र में निवास करते थे, कालान्तर में वे पश्चिमी क्षेत्र की ओर बढ़े और वर्तमान खासी क्षेत्र में निवास करने लगे। ''प्रागैतिहासिक काल में मिले साक्ष्यों के आधार पर सन् ४०० ई. के आसपास या इसके पूर्व पश्चिमी चीन के बहुत से लोग तिब्बत के रास्ते बर्मा में आए । किन्तु वर्मा के चिंदविन घाटी में रहने वाली कुछ शक्तिशाली जन-जातियों ने इन लोगों को असम की ओर ढकेल दिया । वही से ये खासी हिल्स में आये ।[६] परन्तु यह तिथि पूरी तरह स्थापित नहीं की जा सकती । खासी कवि सोसोथाम अपनी रचनाओं में मूल स्थान के बारे में यह प्रश्न बार-बार उठाते हैं । 'कि स्नगिं बरिम उ हिन्यूट्रेप' में संकलित कविता 'का मेरिलुंग' (ka Meirilung) में वे पूछते हैं--

'And ye, o babes of morning bright,
ye kites, ye crows, here throw some light
while fast you fly around the earth,
where can be our first home and hearth ?
If I can fly as fast as ye,
From here upto twelve year's Journey'

स्पष्ट है कि कवि अपने मूल स्थान को लेकर एक चीर देने वाली पीड़ा से कराह रहा है। विद्वानों की यह भी मान्यता है कि खासियों का मूल स्थान सुदूर कम्बोडिया था और वहीं से ये लोग वर्तमान खासी क्षेत्र में आकर बसे । खासियों में प्रचलित एक कथा के अनुसार प्रारम्भ में ईश्वर ने स्वर्ग में सोलह परिवार बनाये । ये परिवार पृथ्वी पर प्रतिदिन सुबह खेती करने आते थे और शाम को काम समाप्त करने के पश्चात् 'सोहपेतनेंग सेतु' से, जो स्वर्ग और पृथ्वी के मध्य था, वापस चले जाते थे । एक बार इनमें से सात परिवारों ने ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध कार्य किया । परिणामस्वरूप, ईश्वर ने पृथ्वी और स्वर्ग के बीच का सेतु काट दिया जिससे ये उसका मुँह न देख सकें । तभी से ये परिवार पृथ्वी पर दुख एवं पीड़ा को भोगने के लिए रह गये । जो अपराध इन परिवारों ने किया था उसका उल्लेख भी एक दंतकथा में मिलता है । इस कथा के अनुसार ईश्वर ने अपने दूत के माध्यम से, जो एक बैल था, पृथ्वी पर मानवों को यह संदेश भिजवाया कि वे अपने भोजन के लिए सुबह शाम सिर्फ एक मुट्ठी चावल पकाएँ और आनन्द से रहें, परन्तु काले कौवे (Raven) रूपी प्रलोभक के कारण वह बैल ईश्वर का संदेश भूल गया और उसने पृथ्वी पर मानवों से एक सेर (Seer) चावल पकाने के लिए कह दिया । ईश्वर ने जब यह देखा तो नाराज होकर उसने अपनी सुनहली छड़ी से बैल के सभी ऊपरी दाँतों का तोड़ दिया और उसके दाहिने तरफ मारा जिससे उस स्थान पर बगल में गड्ढा हो गया । ईश्वर ने कौवे को भी पकड़कर उसके पंखों को हंड़िया की कालिख से काला कर दिया।[७] अधिकांश खासियों का विश्वास है कि उनका सम्बन्ध इन्हीं सात परिवारों से है । जो भी हो, इस संदर्भों से स्पष्ट होता है कि खासी अपना सम्बन्ध अन्यत्र कहीं निवास करने वाले समूह से मानते हैं । समय-समय पर विभिन्न विद्वानों द्वारा खासियों का सम्बन्ध आर्यो से जोड़ने का प्रयास होता रहा है । होमिवेल लिंडोह ने इनका सम्बन्ध हिन्दू सप्तर्षियों से जोड़ने की कोशिश भी की है, परन्तु अधिकांश विद्वान इसे सिरे से इंकार करते हैं और अपने को खासी क्षेत्र का मूल निवासी मानना पसंद करते है । श्री आर. सी. मजुमदार भारत की प्राचीन

जनजातियों में खासियो का उल्लेख करते हैं जो 'योद्धा' के रूप में प्रसिद्ध थे।[५] इन दंत कथाओं एवं सांस्कृतिक संदर्भों से एक बात जो एकदम स्पष्ट है वह यह कि खासियों की सामाजिक संरचना का स्रोत उनकी प्राचीन सांस्कृतिक विरासत से सम्बद्ध है और यह अवधारणा कि वे सिर्फ वनवासी हैं और उनका सांस्कृतिक उन्नयन ठीक से नहीं हुआ है, यह गलत साबित होता है । यही कारण है कि खासी अपनी संस्कृति को अत्यन्त उन्नत मानते हैं और उनके पोषण एवं संरक्षण के लिए निरंतर प्रयत्नशील भी रहते हैं ।

सांस्कृतिक विकास के क्रम में उन्नत दशा की सूचना भाषा एवं साहित्य के विकास से सर्वाधिक मिलती है और अगर इस दृष्टि से विचार करें तो बहुत सकारात्मक संकेत मिलते है । खासी भाषा आस्ट्रो-एशियाटिक भाषा परिवार की भाषा है जो तिब्बती-बर्मी और इंडो आर्यन परिवारों की भाषाओं से घिरी हुई है । इस परिवार की अधिकांश भाषाएँ दक्षिण-पूर्व एशिया के कई देशों में बोली जाती है । इस भाषा परिवार की कुछ भाषाएँ निकोबार द्वीप समूह एवं भारत के अन्य हिस्सों में भी बोली जाती है । इस भाषा की तीन मुख्य शाखाओं में सबसे महत्वपूर्ण शाखा मोनख्मेर समूह है जो दक्षिण-पूर्व एशिया में अर्थात उत्तरी और दक्षिणी विएतनाम, लाओस, कम्पूचिया एवं वर्मा तथा मलेशिया के कुछ भागों में बोली जाती है । ऐसा प्रतीत होता है कि खासी भाषा के विकास-क्रम में भारोपीय भाषाओं का सम्पर्क भी प्राचीन काल से ही रहा क्योंकि इनमें तमाम ऐसे शब्द मिलते हैं जो संस्कृत या हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के साथ-साथ अंग्रेजी, अरबी एवं तुर्की से सीधे गृहीत प्रतीत होते हैं परन्तु ध्वनि परिवर्तन के कारण अन्य प्रतीत होते हैं । ki mar (माल) ka shatri (छतरी) U waiar (अं. wire) ka tala (ताला) ka shabi (चाभी) ka sabon (साबुन) ka tari/shuri (छुरी) ka baje (घड़ी) ka pakha (पंखा) ka istri (इस्त्री) ka kot (अ.किताब) U khulum (अ.कलम) ka kom (अं.Gum) ka borti (बालटी) ka pela (प्याला) ka klat (अं.Glass) ka shamoit (चम्मच) ka rumar (रुमाल) ka ator (इत्र) ka shador (चादर) ka tusok (तु.तोशक) ka shuki (चौकी) ka synduk (अं.संदूक) ka khanshi (तु.कैंची) ka sad (छत) ka ktieh (मिट्टी) ka surok (सड़क) ka baiskop (अं.बाइसंकोप) Isbad (इस्पात) ka brot (अं.Bronze) tyrso (सरसों) आदि सैकड़ों ऐसे शब्द मिल जायेगें जो मूलतः संस्कृत, अंग्रेजी या फारसी आदि से लिये गये है, परन्तु इनका रूप इतना बदल गया है कि पहचान में नहीं आते ।

अपनी मातृसत्तात्मक सामाजिक संरचना के लिए प्रसिद्ध खासी जनजाति कई कारणों से विशिष्ट है, चाहे वह महिलाओं के प्रति आदरभाव के कारण हो, या चाहे 'दरबार' के माध्यम से स्थानीय प्रशासन की व्यवस्था के कारण । समृद्ध सांस्कृतिक विरासत खासी समुदाय को विशेष पहचान प्रदान करती है । खासी साहित्य का विकास खासी समुदाय के बौद्धिक और सांस्कृतिक विकास के साथ ही हुआ । ब्रिटिश शासन की स्थापना और आधुनिक शिक्षा के प्रसार से मौखिक परम्परा से चली आ रही इनकी साहित्यिक विरासत को लिखित रूप मिलना शुरू हुआ । अगर इतिहास की बात करें तो १८१३ तक खासी साहित्य 'वाचिक परम्परा' के माध्यम से ही हस्तांतरित होता रहा। यह वाचिक परम्परा 'फवॉर' अथवा लोकगाथाओं और लोक-काव्य के रूप में पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ती रही । फवॉर की यह परम्परा 'पुरिस्कम' या फेबल्स और 'परोम' या कहानियों के रूप में मिलती है । परोम के भी दो रूप हैं -- एक लघु कहानियों का है और बृहत् रूप लम्बी

कहानियों अथवा लघु उपन्यास का है ।[९] मौखिक परम्परा में खासी कथा वाचक द्वारा लम्बी कहानी का वाचन संक्षेप में दो-तीन घंटे से लेकर दस-बारह घंटे तक भी हो सकता था । कभी-कभी लोकवाद्यों की संगत के साथ ये लोक-कवि अपनी रचनाओं का सस्वर पाठ या गायन करते थे ।

ईसाई मिशनरियों के आगमन से पूर्व लिखित खासी साहित्य प्राप्त नहीं है । इस सम्बन्ध में खासी समुदाय में कई किंवदंतियाँ प्रचलित हैं । एक कथा के अनुसार समुद्र पार करते समय खासियों के पूर्वजों के हाथ से लिखित साहित्य पानी में गिरकर लुप्त हो गया था । कालान्तर में लिखित परम्परा के अभाव में बहुत सी बहुमूल्य साहित्यिक सम्पदा खो गयी ।[१०] वाचिक परम्परा के युग में यदि किसी व्यक्ति को लोकसाहित्य का ज्ञान प्राप्त करना होता था तो उसे कथा-वाचक या लोक-गायक का सान्निध्य प्राप्त करना होता था । इन कथाओं में जहाँ प्राचीन काल के गौरवशाली चरित्रों के साहसिक कार्यों का वर्णन किया जाता था, वहीं पशु-पक्षियों, वृक्षों, पर्वतों आदि के बहुरंगी चित्र भी उतारे जाते थे । प्रेम, युद्ध, शिकार, तीरंदाजी और धार्मिक उत्सवों से सम्बन्धित कथाओं की मौखिक परम्परा इनके सामाजिक जीवन का अंग थी और विवाह आदि सामाजिक समारोहों में लोग रात-रात जागकर लोककथाओं को सुनते-सुनाते थे । अपने श्रमसाध्य एवं कठिन पर्वतीय जीवन की कठिनाइयों को सहज बनाने के लिए ये गीतों की सहायता लिया करते थे । खासी एवं जयन्तिया पहाड़ियों में खेतों में काम करते हुए लोग लोकगीतों के मधुर संगीत से अपने श्रम की पीड़ा को कम करते थे । इन गीतों का चरित्र सामुदायिक होता था और उसमें 'लोक' के विविध पक्षों का आशापूर्ण चित्रण होता था । इस संदर्भ में क्रिस्टोफर कॉडवेल का यह कथन सही लगता है कि -- ''प्रारम्भिक काव्य निश्चित रूप में एक सामूहिक अनुभूति थी जो सामूहिक उत्सवों में उत्पन्न हुई थी । यह उस प्रकार की अनुभूति नहीं थी जो समूह में भय इत्यादि से उत्पन्न होती है, बल्कि आर्थिक आवश्यकता से बँधे समूहों की सहकारी भावनाओं से उद्‌भूत थी ।''[११]

ब्रिटिश राज की स्थापना के कारण जिस नवजागरण का उदय खासी समाज में हुआ, उसने विभिन्न सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों को जन्म दिया । एक ओर उनकी पारम्परिक व्यवस्था में हस्तक्षेप होना शुरू हुआ और दूसरी ओर उन्नति एवं विकास का नया रास्ता भी मिला। खासी समुदाय की राजनीतिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और इनके विकास-क्रम के संदर्भ में ब्रिटिश लेखकों के लेखन से कुछ जानकारियाँ मिलती है । उस समय सोहरा (चेरापूँजी) ब्रिटिश सत्ता का केन्द्र था । खासियों की प्रशासनिक व्यवस्था लिंगडो, सोरदार और सिएम जैसे पारम्परिक शासकों के हाथ में थी। सन् १८४१ तक खासी पहाड़ियों में शान्ति बनी रही परन्तु सन् १८५८ में अंग्रेज-जयन्तिया संघर्ष के पश्चात खासी एवं जयन्तिया क्षेत्र अंग्रेजों के आधिपत्य में आ गया । सन् १८६४ में ब्रिटिश सरकार ने सोहरा की जगह शिलांग को जिला प्रशासन का मुख्यालय बनाने का निश्चय किया और सन् १८६७ में शिलांग जिला मुख्यालय के रूप में काम करने लगा । आगे चलकर जब १८७४ में असम और ईस्ट बंगाल प्रान्त का गठन हुआ तब शिलांग उसकी राजधानी बनी ।

खासी क्षेत्र में ईसाई मिशनरियों के आगमन के साथ ही इनकी साहित्यिक परम्परा की शुरुआत मानी जा सकती है । सोहरा क्षेत्र में बोली जाने वाली खासी भाषा ही 'मानक भाषा' के रूप में प्रचलन में आयी । कृष्णचन्द्र पाल ने १८१३ में 'न्यू टेस्टामेंट' का अनुवाद खासी में किया जिसकी

लिपि बंगला थी । सन् १८१४ में वेल्श प्रेस्बिटेरियल मिशन के थामस जोन्स ने सोहरा में खासी भाषा को लिखित रूप प्रदान कर उसके साहित्यिक विकास का मार्ग प्रशस्त किया । सन् १८४२ में थामस जोन्स ने खासी भाषा में एक प्राइमर पुस्तिका लिखी जिसका नाम था -- 'का किताब बात हिकाइ का खिटेन कासिया' । रोमन लिपि में लिखी गयी यह पुस्तिका खासी भाषा और साहित्य के लिए आरंभिक बिन्दु के समान थी । जोन्स सोहरा क्षेत्र के तीन विद्यालयों के लिए पाठ्य सामग्री तैयार करना चाहते थे और इसी क्रम में उन्होंने इस पुस्तिका की रचना की । उनके प्रयास का परिणाम यह हुआ कि सन् १८५८ तक खासी भाषा में ३२ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी थीं । यद्यपि इनमें से अधिकांश रचनाएँ अनुवादित थी, परन्तु इसके माध्यम से खासी लेखकों ने लेखन-शैली की बारीकियों को ग्रहण किया जो आगामी साहित्यिक विकास को गति प्रदान कर सका । सन् १८९१ में जॉन राबर्ट्स के निर्देशन में बाइबिल का खासी मे अनुवाद किया गया जिनके संशोधित संस्करण बाद के वर्षों में भी प्रकाशित होते रहे । परवर्ती खासी लेखकों और कवियों पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा । उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में कैथोलिक मिशन ने कई धार्मिक पुस्तकों का अनुवाद किया । सन् १८८४ में जॉन राबर्ट्स ने 'ईसॅप' की कई कथाओं का अनुवाद खासी में किया । आगे चलकर एब्राहम और जोसफ की कथाओं का अनुवाद भी राबर्ट्स ने किया । इसके अतिरिक्त जोनाथन स्विफ्ट की 'द विजन ऑफ मिर्जा' का भावानुवाद भी खासी में इनके द्वारा ही किया गया । जॉन राबर्ट्स के बाद जीबन रॉय और इनके पुत्र हरिचरण रॉय ने हिन्दी पौराणिक कथाओं, जैसे रामायण, हितोपदेश तथा चैतन्य महाप्रभु के जीवन-चरित का खासी में रूपान्तर किया । आगे चलकर अनुवाद की यह परम्परा सोसोथाम इत्यादि ने भी जारी रखी । अतः यह कहा जा सकता है कि आरंभिक खासी साहित्य के विकास में अनुवादों की महत्वपूर्ण भूमिका रही । खासी भाषा और साहित्य के इस आरंभिक काल में खासी समुदाय के शिक्षित वर्ग ने अपनी सांस्कृतिक विरासत को पहचानना शुरू किया । अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली के द्वारा ज्ञान-विज्ञान के नये सोपान खुले जिससे खासी समाज का सीधा सम्पर्क पाश्चात्य संस्कृति से हुआ । परिणामस्वरूप आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के आरंभ के साथ ही अंग्रेजियत का प्रभाव इनके ऊपर गम्भीरता से पड़ना शुरू हुआ । खासी समाज को उन्नतिशील एवं जागरूक बनाने के उद्देश्य से सांस्कृतिक मेलजोल एवं साहित्यिक प्रभाव के कारण इनके विकास की प्रक्रिया बड़ी तीव्र रही । इसी क्रम में ईसाई धर्म का प्रभाव भी इन पर अत्यधिक पड़ा । कालान्तर में इसका परिणाम यह हुआ कि ये अपनी पारम्परिक प्रकृति-पूजा को छोड़ने लगे और क्रमशः ईसाई धर्म का प्रभाव इनके ऊपर बढ़ता गया ।

खासी का आरंभिक काव्य उपदेश प्रधान और नीतिपरक है । ईसाई धर्म के आदर्शवादी काव्य के अनुवाद के माध्यम से आत्मगौरव, स्वार्थत्याग, कर्तव्य -बोध जैसे ऊँचे आदर्शों की प्रेरणा दी गयी है । खासी लेखन के आरम्भिक दौर में थामस जोन्स एवं विलियम लेविस की महत्वपूर्ण भूमिका है । सन् १८४५ से १८५० के दरमियान इन दोनों ने 'हिम्स' के साथ-साथ कई महत्वपूर्ण रचनाओं का प्रकाशन किया । इस समय लोरसिंग खौंगवीर नामक खासी रचनाकार ने भी धार्मिक साहित्य की रचना की जो ईसाई धर्म की मान्यताओं पर ही आधारित थी । स्पष्ट है कि उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक खासी समाज में शिक्षा का प्रचार होने लगा था और उपदेशात्मक या नीतिपरक साहित्य से आगे बढ़कर साहित्यिक अभिरुचि की ओर वे उन्मुख होने लगे थे । उनकी

इस मानसिकता को भाँप कर जान राबट्र्स ने अंग्रेजी की कई कविताओं का खासी भाषा में अनुवाद किया और कुछ मौलिक साहित्यिक रचनाएँ भी कीं । इस प्रकार की रचनाओं में 'की खासी' नामक कविता बहुत प्रसिद्ध है जो लम्बे समय तक खासियों के लिए 'राष्ट्रगीत' की तरह थी ।

खासी काव्य परम्परा की अगली कड़ी के रूप में खासी कवि अमजद अली १८६८ - १९२६ का महत्वपूर्ण स्थान है । इनका काव्य वाचिका परम्परा और आधुनिक खासी कविता के बीच कड़ी के रूप में है । 'कामिन्तोह' नामक उनका काव्य संग्रह सन् १८८८ में प्रकाशित हुआ । इस संग्रह की कई कविताएँ खूब प्रसिद्ध हुईं । 'लोबली' कविता में एक घायल सैनिक और उसके सात वर्षीय पुत्र की मार्मिक कथा है । 'रूल खासीज' में खासियों को अंग्रेजों पर निर्भर रहने के बजाय आत्मावलम्बी होने का संदेश दिया गया है । 'इएंगरिउ खासी' आर्थात 'खासियों जागो' में खासियों को सत्य, श्रमशीलता, कर्तव्यनिष्ठा आदि सद्गुणों का विकास करने की प्रेरणा दी गयी है । वे खासियों को सच्चे ज्ञान को हृदयंगम करने को कहते हैं तथा अशिक्षा और अज्ञान के विरुद्ध युद्ध छेड़ने का आह्वान करते हैं । 'रिलिजन' कविता में कवि ने सच्चे धर्म के स्वरूप पर विचार करते हुए उसे 'मुक्ति का द्वार' बताया है । 'जिंगरूअइ इ आ ख्लाड (विदाकाल का गीत) में अमजल अली ने जीवन और मृत्यु के प्रश्नों पर विचार किया है। मृत्यु के सार्वभौमिक सत्य को स्वीकार करते हुए भी वे समय से पूर्व जीवन से पलायन नहीं करना चाहते । मृत्यु के समय अपने प्रियजन को चिरविदा देते हुए वे उसे स्थिरचित्त होकर मृत्युपथ पर चलने को कहते हैं क्योंकि वहाँ जाकर फिर अपने प्रियजनों से मुलाकात होगी। वे कहते हैं --

'जाओ प्रिय मित्र, मै भी आउँगा,
उस प्रिय भूमि के ओर चलते चलो,
मैं भी तो आ ही रहा हूँ,
घर की ओर लौटते हुए

भयभीत न हो
मैं तुम्हारे करीब ही हूँ
मैं कल आउँगा, आज तुम आगे बढ़ो'[१२]

अमजद अली ने अपनी रचनाओं में जीवन के मर्म को अभिव्यक्ति प्रदान की है। उनके काव्य का मानव अपने जीवन का निर्माता स्वयं है । इनकी कविताओं में प्रकृति को भी अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान मिला है । वस्तुतः इनके लिए मनुष्य भी प्रकृति के एक उपकरण की ही तरह है । प्रकृति एवं मानव की यह एकात्मकता उनकी कविताओं को विशिष्ट बनाती है ।

उन्नीसवीं शताब्दी के समापन और बीसवीं शताब्दी के आरंभ में खासी समाज में सांस्कृतिक पुनर्जागरण की धारा प्रवाहित हुई । पाश्चात्य प्रभाव के चलते खासी परम्पराओं एवं रीति-रिवाजों में परिवर्तन होने शुरु हुए । इस सांस्कृतिक पुनरुत्थान के परिणामस्वरूप साहित्य में नये स्वर सुनाई देने लगे जिनमें राबोन सिंग, जीवन रॉय, राधोन सिंगबेरी आदि के नाम प्रमुख हैं । इनके अतिरिक्त होमीवेल लिंगडो एवं सोसोथाम ने भी इस नये स्वर को और तीव्रता प्रदान की । राबोन सिंह ने मौखिक परम्परा से प्राप्त साहित्य को संकलित कर उसे लिखित रूप प्रदान किया । १८९९

में 'का किताब जिंग फवार' का प्रकाशन हुआ जिसमें मौखिक-साहित्य के संकलन के साथ-साथ खासियों के सामाजिक मूल्यों के ह्रास पर चिन्ता व्यक्त की गयी थी । राधोन सिंग बेरी ने भी सांस्कृतिक पुनर्जागरण के क्रम में खासियों के पारम्परिक सांस्कृतिक मूल्यों के विलुप्त होने पर अपनी चिन्ता व्यक्त की । 'उ खासी मिन्ता' एवं 'का जिंग स्नेंग तिम्मेन' नामक रचनाओं के माध्यम से उन्होंने पारम्परिक मूल्यों को बचाये रखने को आवश्यक बताया । लेखों एवं कहावतों के संकलन के बहाने उन्होंने सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति आदर उत्पन्न करने का निरंतर प्रयास किया ।

सांस्कृतिक पुनरुत्थान के समानान्तर एक अन्य धारा खासी साहित्य में प्रवाहित होती रही जिसे धार्मिक पुनरुत्थान कहा जा सकता है । इसके अंतर्गत रैवरैण्ड अमीरखा खैन, राबर्ट एवान्स, मोरखा जोसेफ आदि का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है । मोरखा जोसेफ की प्रसिद्ध रचनाओं में 'उ जुमई बाह हा रि खासी' अर्थात 'खासी प्रदेश में बड़ा भूकम्प' का नाम लिया जा सकता है जो खासी साहित्य का पहला शोकगीत है। इसी तरह 'का जिंगवन हिअर उ मिनसिएम बखुइद हा रि खासी' अर्थात 'खासी प्रदेश में पवित्र आत्मा का आगमन' है जिसमें धार्मिक पुनरुत्थान के आरम्भ होने का वर्णन है । धार्मिक पुनरुत्थान की काव्य-परम्परा के अंतर्गत १९०३ में मोन्डोन बरेह ने 'का जिंगशिशा (सत्य) में सत्य का विवेचन किया है । इन कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से सांस्कृतिक बदलाव को आरेखित करते हुए खासियों के नये सामाजिक चरित्र की ओर संकेत किया जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

सन् १९१३ से १९४० तक का समय खासी साहित्य के उत्कर्ष का काल था। इस समयावधि में सोसोथाम जैसे समर्थ कवि ने खासी भाषा एवं साहित्य को अत्यधिक उँचाई प्रदान की । सोसोथाम का जन्म १८७३ में सोहरा में हुआ था । प्रकृति के मनोरम वातावरण में पले-बढ़े सोसोथाम की कविताओं में प्रकृति का अनन्त सौन्दर्य अपने अनगढ़ रूप में अभिव्यक्त हुआ है । एक साधारण परिवार में जन्में सोसोथाम पेशे से अध्यापक थे । अपनी काव्य-यात्रा का प्रारम्भ यद्यपि उन्होंने 'दि फवॉर उ एसप' नामक अनूदित रचना से किया था, फिर भी उनकी काव्य-प्रतिभा अकूत थी । सन् १९२५ में उन्होंने 'कि पोएट्री खासी' नामक रचना की जिसका पुनर्प्रकाशन १९३६ में 'का दुइतारा क्सिआर' (स्वर्णवीणा) नाम से हुआ । इसमें अंग्रेजी कुछ कविताएँ अंग्रेजी से अनूदित थीं और कुछ उनकी मौलिक रचनाएँ थीं । इन कविताओं की पृष्ठभूमि में उनकी वैयक्तिक पीड़ा थी जिसे सोसोथाम ने उदात्त स्वर प्रदान कर मानवीय-पीड़ा के रूप में व्यक्त किया था । सोसोथाम की पत्नी की मृत्यु १९०८ में हुई थी । अकेले पाँच बच्चों के लालन-पालन का पूरा बोझ सोसोथाम पर था, परन्तु इसे भी उन्होंने ईश्वर की देन ही माना ।[१३] नियति से संघर्ष, सांसारिक कष्ट और मृत्यु की अनिवार्यता पर रची गयी कृतियों में 'उ सिब', 'उ सेण्डी' और 'उ तिरोत' कविताएँ है जिनमें उनकी व्यक्तिगत दुःख भरी घटनाओं की गहरी अभिव्यक्ति स्थान-स्थान पर देखी जा सकती है। प्रकृति के सौन्दर्य में वे भूलना चाहते हैं --

'अक्सर मैं बादलों से घिरे दिनों में,
प्रकृति की गोद में होता हूँ,
उजले दिन फिर आते हैं,
आसमान फिर स्वच्छ हो जाता है,

जब मैं थक जाता हूँ
और आँसू बहाता हूँ ।'[१४]

सोसोथाम ने आधुनिक खासी काव्यकला की आधारशिला रखी । उन्होंने अपने लिए नये छन्द-विधान की रचना की । थाम के अनुसार कविता कवि के हृदय में स्थित सतत क्रियाशील प्रेरणा की तरह है । इसकी तुलना उन्होंने चार तारों वाले तंत्रीवाद्य दुइतारा से की है । कविता इसी की झंकृति है ।१५ सन् १९३६ में ही उनकी प्रसिद्ध रचना 'कि स्नगि बरिम उ हिन्युट्रेप' (सात कुटियों के प्राचीन दिन) प्रकाशित हुई जिसमें खासियों के सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक विरासत की खोज की गयी है । इस पुस्तक में खासी जनजाति में प्रचलित मिथकों, किंवदन्तियों, धार्मिक विश्वास एवं जीवन दर्शन, सांस्कृतिक विशिष्टता आदि पर विचार किया गया है । वे लिखते हैं--

'उनका क्या जो जांन पायेंगे नहीं
अपना गौरव - जब वह नहीं रह जायेगा । जाज्वल्यमान
पहाड़ियों के चतुर्दिक, और नीचे की गहरी तृणभूमि में,
सभी भावी पीढ़ियों के लिए रहे, यह ज्ञान
भोर से संध्या तक,
हम हैं हिन्यूट्रेप की संतान ।'[१६]

सोसोथाम के समकालीन कवियों और लेखकों में निहोन सिंग वाह्लांग, ब्रोनात थैक्यू, एल. लेविस आदि आते हैं । वाह्लांग प्रकृति के कवि थे । उनके लिए प्रकृति एक मित्र के समान है जो सबका पोषण करती है । एल. लेविस ने ऋतुओं पर आधारित सुन्दर कविताएँ लिखी हैं । लेविस की रचनाओं का महत्व जीवन और विशेषकर प्रकृति के प्रति बदलते हुए दृष्टिकोण के कारण है । 'वसंत ऋतु' का वर्णन करते हुए कवि खासी प्रदेश में वसंत के आगमन पर उल्लास व्यक्त करते हुए कहता है कि धरती जैसे नींद से जागकर अंगड़ाई ले रही है । धरती ने नर्म घास के वस्त्र धारण किये हैं और वृक्ष नये पत्तों और फूलों से सज्जित हो गये हैं । 'का पिरेम' शीर्षक कविता में वसंत की इसी मनोरम सुन्दरता का वर्णन है ।

आधुनिक कथा-लेखकों एवं कवियों में प्रिमरोज गैटपोह (सन् १९०० - १९७६) का नाम भी लिया जाता है । इन्होंने कई कहानियाँ और लघु उपन्यासों की रचना की है। इन रचनाओं का संकलन 'सोंड़ोग का लिंग्वियर ड्पई' नाम से किया गया है । 'उ लुम राइटौंग वड कि श्केन खौंगपौंग' नामक रचना में प्रेम-प्रधान कथाएँ संकलित हैं । इसके अतिरिक्त 'का सोहलिंगजेम', 'का पेराटिरसो' और 'उ सिएर लापालांग' उनके काव्य-संग्रह हैं जिसमें प्रकृति के अनन्त सौन्दर्य के साथ-साथ मानव जीवन के विविध पक्षों का अंकन है।

खासी साहित्य के उपर्युक्त विकास के अतिरिक्त लोक-नाट्य का विकास भी इनमें हुआ परन्तु इसका प्रभाव खासी हिल्स से हटकर जोवाई इत्यादि स्थान पर अधिक था। वस्तुतः लोक-नाट्यों के विकास को सांस्कृतिक त्योहारों से जोड़कर ही उनका अध्ययन किया जा सकता है । साहित्य के रूप में लिखित उनका लिपि-बद्ध रूप आज भी अत्यल्प ही है । सन् १९१० में हरिचरण राय कृत 'का सावित्री' खासी में लिखित पहला नाटक माना जाता है । इसमें मूल कथा तो

सावित्री-सत्यवान की है परन्तु पात्रों एवं स्थान का नाम खासी है और कुछ अन्य खासी चरित्रों का समावेश भी इसमें किया गया है । नाटकों में दीनोनाथ रॉय के 'उ दिपस्नमि' का नाम भी लिया जाता है जिसका प्रकाशन १९२४ में हुआ था ।

सन् १९६० में एफ. एम. पुध ने खासी भाषा और संस्कृति पर आधारित 'लैगुएम नांगनो उ खासी उ वान मिह' नामक रचना प्रकाशित की । सन् १९७९ में एच. डब्लू. स्टेन ने 'का हिस्ट्री का किटेन खासी' नामक ग्रंथ लिखा । विक्टर जी. बरेह ने सन् १९५७ में 'उ तिरोत सिंग' नामक नाटक की रचना की जो १८२९ से १८३३ तक अंग्रेजी हुकूमत से संघर्ष करने वाले वीर तिरोत सिंग के जीवन पर आधारित था । इसी तरह महत्वपूर्ण रचनाओं में 'उ मिहस्नगि' नामक नाटक का नाम लिया जाता है जो मोन्डौन बरेह द्वारा रचित था । इसके अतिरिक्त एस. जे. डन्कन, ओ. लामारे, डी. एस. खौंगडप ने भी कई नाटकों की रचना की जो लोक-कथाओं पर आधारित थे ।

स्वातंत्र्योत्तर काल की प्रमुख रचनाओं में वी. जी. वरेह की 'का पोएट्री खासी', एफ. एम. पुध की 'कि फवार रवाई खासी' का नाम भी लिया जाता है । इनके अतिरिक्त वाह्लांग, क्लास्टर फील्ड खौंगवीर आदि रचनाकारों नें भी अपनी रचनाओं से खासी भाषा एवं साहित्य को समृद्ध किया है । इनमें आधुनिक खासी समाज का चित्रण तो है परन्तु प्रेरणा-स्रोत के रूप में प्राचीन ऐतिहासिक लोक-कथाएँ ही हैं ।

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में खासी भाषा एवं साहित्य में अत्यधिक विकास हुआ। शिक्षण संस्थाओं में खासी की विधिवत एवं व्यवस्थित शुरुआत ने इसके विकास में योगदान दिया । विभिन्न सांस्कृतिक एवं राजनीतिक कारणों से अपनी भाषा एवं संस्कृति के प्रति इनमें अत्यधिक जागरूकता आयी । पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय में खासी विभाग की शुरुआत के साथ ही खासी भाषा एवं साहित्य के क्षेत्र में उच्च शिक्षा एवं अध्ययन का नया द्वार खुल गया । शोध एवं अनुसंधान के परिणाम स्वरूप जहाँ एक ओर खासी भाषा के विविध पक्षों के आरेखन का कार्य हो रहा है वहीं साहित्य का अध्ययन भी संवेदना एवं शिल्प दोनों ही स्तरों पर किया जा रहा है । इसके साथ ही तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से अन्य विषयों के साथ खासी भाषा एवं साहित्य का विकास हो रहा है । इन सबका सबसे सार्थक परिणाम यह हुआ कि खासी भाषा और साहित्य अपनी क्षेत्रीय सीमा का अतिक्रमण करके राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बना रहे हैं ।

संदर्भ-सूची :

1. ka duitara ksiar - U Soso Tham, published by Mrs. A. D. Dkhar, Naiaw Langsning, Shillong, 1936, page 14.
2. A short history of khasi Literature, Hamlet Bareh, published by scorpio press, Shillong, 3rd edition, reprinted in 1990, page 9.
3. Khasi poetry : Origin & Development, H. W. Sten, published by K.M. Mittal for Mittal publications, A - 1/8, Mohar Garden, New Delhi - 110059, First edition 1990, page 1.
4. Khasi poetry : Origin & Development, H.W. Sten, P. 11.
5. Khasi poetry : Origin & Development, H.W. Sten, P. 2

6. पूर्वोत्तर भारत और अलगाववाद, चन्द्रभूषण
7. Khasi poetry : Origin & Development, H.W. Sten, P. 78.
8. Khasi poetry : Origin & Development, H.W. Sten, P. 4.
9. Khasi poetry : Origin & Development, H.W. Sten, P. 67.
10. Khasi poetry : Origin & Development, H.W. Sten, P. 135.
11. Illusion and reality, Christopher Caudwell, published by Messrs. Lawrence & Wishart Lt.d. London in 1946, page 59.
12. Khasi poetry : Origin & Development, H.W. Sten, P. 135.
13. Biblical influence on pre-independence khasi literature - Philomena kharakor RNDM, published by scholar publishing house (p) ltd, 85, Model Basti, New Delhi - in 1998, page 112.
14. U sim ba la lait, ka duitara ksiar, page 45.
15. Khasi poetry : Origin & Development, H.W. Sten, P. 197.
16. ka Aiom ksiar, ki sngi ba sim U hynniew trep, by U soso tham, Ri khasi Press, Shillong, 1976, page 45-48.

रीडर, हिन्दी, विभाग
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय
शिलांग - ७९३०२२